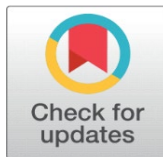


PREMCHAND'S NOVELS: SOCIAL REALISM, THE ANATOMY OF EXPLOITATION, AND THE CRISIS OF HUMAN VALUES

प्रेमचंद के उपन्यास: सामाजिक यथार्थ, शोषण का शास्त्र और मानवीय मूल्यों का संकट

Nandkishor¹ , Gulab Singh Verma¹ 

¹ Department of Hindi, Kalinga University, Naya Raipur, Chhattisgarh, India



Received 18 October 2025
Accepted 20 November 2025
Published 31 December 2025

Corresponding Author

Nandkishor,
nandkishorsahu1208@gmail.com

DOI
[10.29121/ShodhSamajik.v2.i2.2025.90](https://doi.org/10.29121/ShodhSamajik.v2.i2.2025.90)

Funding: This research received no specific grant from any funding agency in the public, commercial, or not-for-profit sectors.

Copyright: © 2025 The Author(s). This work is licensed under a [Creative Commons Attribution 4.0 International License](https://creativecommons.org/licenses/by/4.0/).

With the license CC-BY, authors retain the copyright, allowing anyone to download, reuse, re-print, modify, distribute, and/or copy their contribution. The work must be properly attributed to its author.



ABSTRACT

English: This research presents a multidimensional and critical analysis of the portrayal of social realism in Premchand's major novels. Premchand (1880–1936) was a seminal, epoch-making novelist in Hindi literature who transformed the novel genre into a mirror of society. This study re-examines his literature in light of the nature of his realism, the concept of 'Idealistic Realism' (*Adarshonmukh Yatharthvad*), his contribution to the Progressive literary tradition, and contemporary Dalit criticism (Gajrawala, 2012). The research entails a detailed analysis of novels such as *Godan*, *Rangbhumi*, *Nirmala*, *Gaban*, *Sevasadan*, *Karmbhumi*, and *Premashram*. It places at its center themes such as the economics of rural India, the tragedy of the peasantry, the dynamics of the caste system, women's discourse, and the moral crisis of the urban middle class. The research concludes that Premchand's realism begins with empathy and compassion, ultimately culminating in a demand for justice and equality. His novels remain relevant today in the context of caste-based violence, agrarian movements, and women's safety, notwithstanding certain historical limitations inherent in his realism.

Hindi: यह शोध प्रेमचंद के प्रमुख उपन्यासों में सामाजिक यथार्थ के चित्रण का बहुआयामी और आलोचनात्मक विश्लेषण प्रस्तुत करता है। प्रेमचंद (१८८०-१९३६) हिंदी साहित्य के ऐसे युग-प्रवर्तक उपन्यासकार हैं, जिन्होंने उपन्यास विधा को समाज का दर्पण बनाया। यह अध्ययन उनके यथार्थवाद के स्वरूप, आदर्शोन्मुख यथार्थवाद की अवधारणा, प्रगतिशील परंपरा में उनके योगदान और समकालीन दलित आलोचना (गजरावाला, २०१२) के आलोक में उनके साहित्य की पुनर्समीक्षा करता है। शोध के अंतर्गत गोदान, रंगभूमि, निर्मला, गबन, सेवासदन, कर्मभूमि और प्रेमाश्रम जैसे उपन्यासों का विस्तृत विश्लेषण किया गया है। इसमें ग्रामीण भारत के अर्थशास्त्र, किसान वर्ग की त्रासदी, जाति-व्यवस्था की गतिशीलता, स्त्री-विमर्श और शहरी मध्यवर्ग के नैतिक संकट जैसे विषयों को केन्द्र में रखा गया है। शोध का निष्कर्ष है कि प्रेमचंद का यथार्थवाद दया और करुणा से शुरू होकर न्याय और समानता की मांग तक पहुँचता है। उनके उपन्यास आज भी जाति हिंसा, किसान आंदोलन और महिला सुरक्षा के संदर्भ में प्रासंगिक हैं, यद्यपि उनके यथार्थवाद की कुछ ऐतिहासिक सीमाएँ भी हैं।

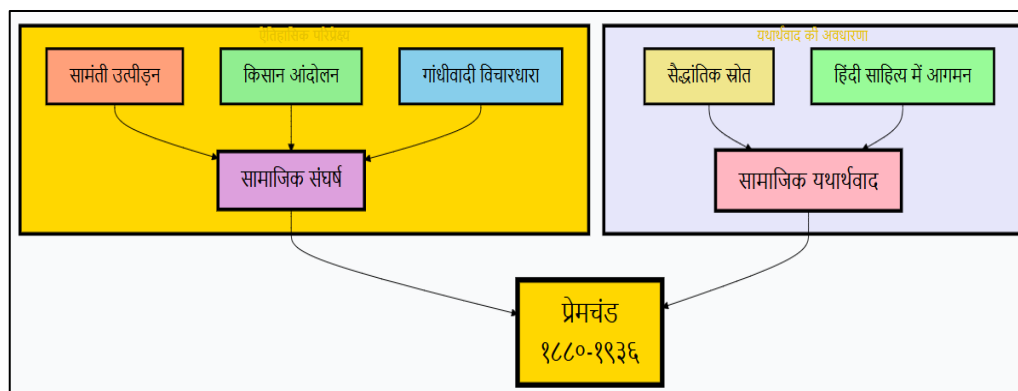
Keywords: Premchand, Idealistic Realism, Godan, Peasantry, Caste System, Dalit Criticism, Women's Discourse, Nirmala, Gaban, Premchand, सामाजिक यथार्थवाद, आदर्शोन्मुख यथार्थवाद, गोदान, किसान वर्ग, जाति-व्यवस्था, दलित आलोचना, स्त्री-विमर्श, निर्मला, गबन, रंगभूमि

1. प्रस्तावना

हिंदी साहित्य के इतिहास में प्रेमचंद (१८८०-१९३६) का नाम ऐसे युग-प्रवर्तक लेखक के रूप में अंकित है, जिन्होंने उपन्यास विधा को केवल मनोरंजन का साधन न रहने देकर उसे समाज के यथार्थ का दस्तावेज बना दिया। आचार्य रामचंद्र शुक्ल के शब्दों में, प्रेमचंद हिंदी के पहले ऐसे उपन्यासकार हैं, जिन्होंने

'जीवन के व्यापक सत्य' को अपने साहित्य का विषय बनाया [Shukla \(1941\)](#)। उनकी यथार्थवादी परंपरा का उद्भव आकस्मिक नहीं था, बल्कि यह उन ऐतिहासिक, सामाजिक और सांस्कृतिक परिवर्तनों की स्वाभाविक देन थी, जिनसे बीसवीं सदी का प्रारंभिक भारत गुजर रहा था। प्रेमचंद ने साहित्य को 'समाज का दर्पण' मात्र नहीं, बल्कि उसे सुधारने का एक सशक्त हथियार माना। अपने प्रसिद्ध लेख 'साहित्य का उद्देश्य' में उन्होंने स्पष्ट किया कि "साहित्य वह दर्पण नहीं है जो केवल चेहरे के सुंदर और असुंदर भावों को दिखाता है, बल्कि वह वह खिड़की है जिसमें से होकर मनुष्य समाज के अंतःकरण में झांक सकता है" [Premchand \(1954\)](#)। यही दृष्टिकोण उनके यथार्थवाद की आधारशिला बना, जिसे बाद में आलोचकों ने 'आदर्शोन्मुख यथार्थवाद' की संज्ञा दी।

चित्र 1



चित्र 1 ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य: बीसवीं सदी के प्रारंभिक दशकों में भारतीय समाज की स्थिति

प्रेमचंद के लेखन को समझने के लिए उस ऐतिहासिक संदर्भ को समझना अनिवार्य है, जिसमें वे लिख रहे थे। बीसवीं सदी का पूर्वार्द्ध भारतीय समाज के लिए अत्यधिक उथल-पुथल भरा काल था। एक ओर ब्रिटिश उपनिवेशवाद अपनी चरम सीमा पर था, वहीं दूसरी ओर राष्ट्रीय चेतना का जागरण हो रहा था।

सामंती उत्पीड़न और किसानों की दुर्दशा: इस कालखंड में भारतीय किसान सबसे अधिक शोषित वर्ग था। जमींदारी और महाजनी प्रथा ने ग्रामीण अर्थव्यवस्था को लगभग चौपट कर दिया था। इतिहासकार बिपिन चंद्र के अनुसार, "किसानों पर लगातार बढ़ते लगान, कर्ज के बोझ और साहूकारों की ब्याज दरों ने उन्हें दासता की स्थिति में ला दिया था" [Chandra \(1989\)](#)। प्रेमचंद के उपन्यासों में यही किसान केन्द्र में है - चाहे वह गोदान का होरी हो या प्रेमाश्रम का गया घोसी। यह स्थिति केवल आर्थिक नहीं थी, बल्कि सामाजिक और मनोवैज्ञानिक पतन का कारण भी बन रही थी।

किसान आंदोलन और जन-जागरण: प्रेमचंद के लेखन के समानांतर ही भारत में किसान आंदोलन अपने स्वरूप को तीव्र कर रहे थे। बिहार में चंपारण सत्याग्रह (१९१७) और उत्तर प्रदेश में किसान सभा के गठन ने ग्रामीण भारत में एक नई राजनीतिक चेतना का संचार किया। मजाज़ की प्रसिद्ध पंक्ति "किसान का जवानी फूला, जमींदार का मान डोला" इसी जागरण को अभिव्यक्त करती है। इन आंदोलनों का प्रभाव प्रेमचंद के कर्मभूमि और रंगभूमि जैसे उपन्यासों में स्पष्ट दिखाई देता है, जहां जन-सामान्य शोषण के विरुद्ध संघर्ष के लिए तैयार होता है।

गांधीवादी विचारधारा का प्रभाव: प्रेमचंद पर महात्मा गांधी के विचारों का गहरा प्रभाव पड़ा। गांधीजी ने सत्य, अहिंसा, सर्वोदय और अस्पृश्यता निवारण जैसे मुद्दों को राष्ट्रीय आंदोलन से जोड़ा। डॉ. कमल किशोर गोयनका का मानना है कि "गांधीवाद ने प्रेमचंद के साहित्य को नैतिक बल प्रदान किया और उनके यथार्थवाद को एक नई दिशा दी" [Goyanka \(1980\)](#)। गोदान में गांधीवादी विचारों के प्रति प्रेमचंद का आस्था और आशंका का द्वंद्व, तथा कर्मभूमि में सक्रिय राजनीतिक चेतना का चित्रण, गांधीवाद के प्रति उनके गहरे आलोचनात्मक जुड़ाव को दर्शाता है।

2. यथार्थवाद की अवधारणा: सैद्धांतिक स्रोत और हिंदी साहित्य में आगमन

यथार्थवाद (Realism) साहित्य की वह प्रवृत्ति है जो जीवन और समाज को 'जैसा है' वैसा दिखाने का प्रयास करती है। यह रोमांस और आदर्शवाद के विपरीत, सामान्य जीवन की सच्चाइयों, समस्याओं और संघर्षों को केन्द्र में रखता है। पाश्चात्य साहित्य में यथार्थवाद का उद्भव उन्नीसवीं सदी में हुआ, जब बाल्ज़ाक, फ़्लोबेयर और चार्ल्स डिक्केन्स जैसे लेखकों ने मध्यवर्गीय जीवन को उसकी समग्रता में प्रस्तुत किया।

सामाजिक यथार्थवाद (Social Realism): यह यथार्थवाद की वह शाखा है, जो विशेष रूप से सामाजिक संरचनाओं, वर्ग-संघर्ष और आर्थिक असमानताओं पर केन्द्रित होती है। मार्क्सवादी आलोचक जॉर्ज लुकाच के अनुसार, "सच्चा यथार्थवादी लेखक वह है जो समाज की अंतर्निहित गतिशीलता को पकड़ता है और अपने पात्रों के माध्यम से ऐतिहासिक प्रक्रिया को मूर्त रूप प्रदान करता है" [Lukács \(1962\)](#)। प्रेमचंद के उपन्यासों में हम यही देखते हैं - वे महज घटनाओं का चित्रण नहीं करते, बल्कि उन घटनाओं को पैदा करने वाली सामाजिक शक्तियों का विश्लेषण प्रस्तुत करते हैं।

हिंदी साहित्य में यथार्थवाद का आगमन: हिंदी में यथार्थवादी परंपरा के प्रवर्तक प्रेमचंद ही माने जाते हैं। उनसे पूर्व देवकीनंदन खत्री की तिलस्मी कहानियाँ और किशोरीलाल गोस्वामी के ऐतिहासिक उपन्यास लोकप्रिय थे, किंतु उनमें यथार्थ का अभाव था। प्रेमचंद ने पहली बार उपन्यास को कल्पना की उड़ान से निकालकर धरातल पर उतारा। आलोचक विजय मोहन सिंह के शब्दों में, "प्रेमचंद से पहले उपन्यास पलायनवादी प्रवृत्ति का साहित्य था, प्रेमचंद ने उसे सामाजिक दस्तावेज का रूप दिया" [Singh \(2002\)](#)।

3. शोध के उद्देश्य

- 1) प्रेमचंद के प्रमुख उपन्यासों (विशेषकर गोदान, कर्मभूमि, गबन, निर्मला, रंगभूमि) में चित्रित सामाजिक यथार्थ के विविध आयामों का विश्लेषण करना।
- 2) उनके यथार्थवाद के आदर्शोन्मुख स्वरूप की आलोचनात्मक समीक्षा करना और यह रेखांकित करना कि यह आदर्श उनके यथार्थ चित्रण को किस प्रकार प्रभावित करता है।
- 3) प्रेमचंद के उपन्यासों में जाति, वर्ग और स्त्री-विमर्श की अंतर्संबंधितता (intersectionality) का पता लगाना।
- 4) समकालीन दलित और स्त्रीवादी आलोचना के आलोक में प्रेमचंद के यथार्थवाद की सीमाओं और संभावनाओं की पहचान करना।

4. शोध की परिकल्पना

प्रस्तुत शोध की मूल परिकल्पना यह है कि प्रेमचंद का सामाजिक यथार्थ केवल दयनीयता और पीड़ा का चित्रण नहीं है, बल्कि वह समाज के पुनर्गठन और मानवीय मूल्यों की स्थापना की एक सचेत चेतना का वाहक है। उनके उपन्यासों में यथार्थ का चित्रण एक ओर जहाँ शोषण के मूल कारणों को उद्घाटित करता है, वहीं दूसरी ओर पाठक में संवेदना और न्याय की भावना का संचार करता है। हालाँकि, यह भी परीक्षण का विषय है कि क्या यह यथार्थवाद कहीं न कहीं एक 'सवर्णीय दृष्टि' (Brahminical gaze) का शिकार तो नहीं हो जाता, जैसा कि हाल के वर्षों में तोराल जतिन [Gajarawala \(2012\)](#) जैसी आलोचकों ने तर्क प्रस्तुत किया है।

4.1. प्रेमचंद के उपन्यासों का सामाजिक सरोकार: एक आलोचनात्मक बहस

प्रेमचंद के उपन्यासों के केन्द्र में सामाजिक सरोकारों की गहरी पैठ रही है। उनका संपूर्ण लेखन मनुष्य की पीड़ा, उसके शोषण और उससे मुक्ति की आकांक्षा से निरंतर आंदोलित होता है। इस सामाजिक सरोकार की प्रकृति को लेकर हिंदी आलोचना में एक लंबी और गहन बहस चली है। इस अध्याय में हम इस बहस के विभिन्न पक्षों की समीक्षा करेंगे, जिसमें आदर्शोन्मुख यथार्थवाद की अवधारणा से लेकर दलित आलोचना के नए सिरे से उठे प्रश्न शामिल हैं।

5. आदर्शोन्मुख यथार्थवाद: सीमा या संभावना?

प्रेमचंद के यथार्थवाद के स्वरूप को परिभाषित करने का सबसे महत्वपूर्ण प्रयास आचार्य नंददुलारे वाजपेयी ने किया। उन्होंने प्रेमचंद की कला के लिए 'आदर्शोन्मुख यथार्थवाद' शब्द का प्रयोग किया। वाजपेयी के अनुसार, प्रेमचंद का यथार्थवाद केवल जीवन के कटु सत्यों को उजागर करने तक सीमित नहीं है, बल्कि उसमें एक आदर्श की ओर बढ़ने की प्रवृत्ति है। वे लिखते हैं, "प्रेमचंद यथार्थ को देखते हैं, पर उनकी दृष्टि आदर्श पर जा टिकती है। वे जीवन की विसंगतियों से दुखी होते हैं, किंतु निराश नहीं होते" [Vajpeyi \(1955\)](#)। यह दृष्टि उनके उपन्यासों में बिखरे हुए उन प्रसंगों में दिखाई देती है, जहाँ शोषण के अंधकार के बीच भी मानवीय संवेदना और न्याय की एक किरण दिखाई देती है।

किंतु यह प्रश्न स्वाभाविक रूप से उठता है कि क्या यह आदर्शोन्मुखता उनके यथार्थ चित्रण की सीमा भी बन जाती है? गोदान का होरी अंत तक अपनी 'मरजाद' को नहीं छोड़ता, चाहे उसे इसके लिए कितनी ही कीमत क्यों न चुकानी पड़े। आलोचक विजय मोहन सिंह इस संदर्भ में टिप्पणी करते हैं कि "होरी की मृत्यु में एक प्रकार की आध्यात्मिक विजय है, किंतु यह प्रश्न अनुत्तरित रह जाता है कि क्या यह विजय उसकी सामाजिक पराजय को ढंक पाती है" [Singh \(2002\)](#)। यहीं पर आदर्शोन्मुखता एक सीमा के रूप में सामने आती है - यह पाठक को एक नैतिक संतोष तो देती है, परंतु शोषण की जड़ों को उखाड़ फेंकने की क्रांतिकारी चेतना को कुंद भी कर सकती है।

5.1. प्रगतिशील परंपरा में प्रेमचंद: वैचारिक आधार और योगदान

प्रेमचंद का यथार्थवाद प्रगतिशील लेखक आंदोलन के उदय के साथ एक नए वैचारिक आधार से जुड़ा है। १९३६ में प्रगतिशील लेखक संघ (PWA) की स्थापना हुई और इसी वर्ष प्रेमचंद ने अपना अंतिम उपन्यास गोदान पूरा किया। प्रगतिशील आंदोलन के उदय के समय प्रेमचंद की भूमिका एक सेतु की तरह थी - वे एक ओर पुरानी पीढ़ी के आदर्शवाद से जुड़े थे, तो दूसरी ओर नई पीढ़ी के मार्क्सवादी उत्साह को समझते थे।

प्रेमचंद के यथार्थवाद का वैचारिक आधार स्पष्ट रूप से वर्ग-संघर्ष और आर्थिक असमानता की समझ पर टिका है। डॉ. रामविलास शर्मा ने प्रेमचंद और उनका युग में लिखा कि "प्रेमचंद ने किसानों के शोषण के उन रूपों को पहचाना, जो सीधे दिखाई नहीं देते। गोदान में होरी के विरोधी बड़े सतर्क हैं। वे ऐसा काम करने में झिझकते हैं, जिससे होरी दस-पाँच को इकट्ठा करके उनका मुकाबला करने को तैयार हो जाए" [Sharma \(1978\)](#)। यह शोषण की उस सूक्ष्म और व्यवस्थागत प्रकृति को पहचानना है, जो प्रगतिशील दृष्टि की विशेषता है।

5.2. दलित आलोचना का दृष्टिकोण: पाठकीय अपराधबोध और दया का विमर्श

प्रेमचंद के साहित्य पर हाल के वर्षों में दलित आलोचना ने कुछ ऐसे प्रश्न उठाए हैं, जिनसे उनके यथार्थवाद की पुनर्समीक्षा की आवश्यकता महसूस होती है। तोराल जतिन गजरावाला ने अपनी पुस्तक *Untouchable Fictions: Literary Realism and the Crisis of Caste* (२०१२) में यह तर्क प्रस्तुत किया कि प्रेमचंद का यथार्थवाद, विशेषकर जाति प्रश्न पर, 'पाठकीय अपराधबोध' (readerly guilt) और 'दया' (sympathy/pity) की भावना पर आधारित है, न कि पूर्ण 'एकजुटता' (solidarity) पर।

गजरावाला के अनुसार, प्रेमचंद के दलित चरित्र पाठक के मन में करुणा और दया का भाव जगाते हैं, किंतु वे उनके साथ खड़े होने की राजनीतिक चेतना का सृजन नहीं कर पाते। वे लिखती हैं, "ये रचनाएँ पाठक को दलित चरित्रों के प्रति 'अच्छा महसूस' करने का अवसर देती हैं, बजाय इसके कि वे उनके साथ मिलकर व्यवस्था के विरुद्ध खड़े होने की प्रेरणा दें" [Gajarawala \(2012\)](#)। गोदान में सिलिया का चरित्र इस दृष्टि से विश्लेषण योग्य है। सिलिया जाति और लिंग के दोहरे शोषण का शिकार है, किंतु उसका विद्रोह एक व्यक्तिगत प्रतिकार तक सीमित रह जाता है, सामूहिक दलित चेतना का रूप नहीं ले पाता।

गोदान में सिलिया का चरित्र इस दृष्टि से महत्वपूर्ण है। एक तथाकथित नीची जाति की लड़की होने के कारण वह दोहरे शोषण का शिकार है - एक ओर पंडित दातादीन की बेगार खटने वाली मजदूर, दूसरी ओर उसके पुत्र मातादीन द्वारा यौन शोषण की शिकार। दातादीन की यह टिप्पणी कि "यह प्रथा आदिकाल से चली आई है और इसमें कोई लज्जा की बात नहीं" [Premchand \(1936\)](#), जाति-व्यवस्था की निर्ममता को उजागर करती है। किंतु प्रश्न यह है कि क्या सिलिया के चरित्र का चित्रण उसे एक 'करुण पात्र' मात्र बनाकर रख देता है, या उसे अपने अस्तित्व की पूर्ण चेतना प्रदान करता है?

6. ग्रामीण भारत का अर्थशास्त्र: किसान वर्ग की त्रासदी और सामंती शोषण

प्रेमचंद के उपन्यासों का सबसे बड़ा योगदान यह है कि उन्होंने भारतीय किसान के जीवन को उसकी संपूर्ण आर्थिक, सामाजिक और मनोवैज्ञानिक जटिलता के साथ प्रस्तुत किया। उनके उपन्यास ग्रामीण भारत के अर्थशास्त्र का एक ऐसा दस्तावेज हैं, जिसमें किसान की त्रासदी और उसके सामंती शोषण के विभिन्न आयामों को रेखांकित किया गया है।

6.1. गोदान: किसान होरी की आर्थिक विवशता और ऋण का दुष्चक्र

गोदान भारतीय किसान की त्रासदी की महागाथा है। इस उपन्यास का नायक होरी भारतीय किसान का प्रतिनिधि चरित्र है, जो जीवन पर्यंत शोषण की चक्की में पिसता रहता है। डॉ. रामविलास शर्मा के शब्दों में, "गोदान में किसानों के शोषण का रूप ही दूसरा है। यहाँ सीधे-सीधे राय साहब के कारिंदे होरी का घर लूटने नहीं पहुँचते, लेकिन उसका घर लुट जरूर जाता है। यहाँ अंग्रेजी राज के कचहरी-कानून सीधे-सीधे उसकी ज़मीन छीनने नहीं पहुँचते, लेकिन ज़मीन छीन जरूर जाती है" [Sharma \(1978\)](#)।

होरी की आर्थिक विवशता का मूल कारण 'ऋण' का वह दुष्चक्र है, जिसमें वह जन्म से लेकर मृत्यु तक फंसा रहता है। प्रेमचंद लिखते हैं, "जीवन में ऐसा तो कोई दिन ही नहीं आया कि लगान और महाजन को देकर कभी कुछ बचा हो" [Premchand \(1936\)](#)। होरी के पास पाँच बीघा ज़मीन है, जिस पर वह खेती करता है, किंतु उपज का बड़ा हिस्सा लगान और सूद के रूप में चला जाता है। उसकी स्थिति का वर्णन करते हुए प्रेमचंद लिखते हैं कि वह "हारे हुए महीप की भाँति उसने अपने को इन तीन बीघे के किले

में बन्द कर लिया था और उसे प्राणों की तरह बचा रहा था। फाँके सहे, बदनाम हुआ, मजदूरी की; पर किले को हाथ से न जाने दिया" Premchand (1936).

प्रश्न यह है कि क्या होरी की त्रासदी व्यक्तिगत नियति है या व्यवस्थागत विफलता? इसका उत्तर स्पष्ट है कि होरी की त्रासदी किसी व्यक्तिगत दुर्भाग्य का नहीं, बल्कि संपूर्ण सामंती-औपनिवेशिक व्यवस्था की विफलता का परिणाम है। होरी अपनी परिस्थितियों को समझने में असमर्थ है और इसे भाग्य का दोष मानकर संतोष कर लेता है। वह धनिया से कहता है, "जब दूसरे के पाँव तले अपनी गर्दन दबी है तो उन पाँवों को सहलाने में ही अपनी कुशल है" Premchand (1936). यह वाक्य किसान की उस परवशता को व्यक्त करता है, जो उसे शोषण के प्रति विद्रोह नहीं, बल्कि समर्पण सिखाती है।

6.2. कर्मभूमि और प्रेमाश्रम: ग्रामीण अर्थव्यवस्था पर शहरी पूंजी का प्रभाव

कर्मभूमि और प्रेमाश्रम में प्रेमचंद ने ग्रामीण अर्थव्यवस्था पर शहरी पूंजी के बढ़ते प्रभाव और जमींदारी प्रथा के अत्याचार को रेखांकित किया है। प्रेमाश्रम में किसानों की बेदखली और बढ़ते लगान के खिलाफ आंदोलन का चित्रण है। यह उपन्यास ग्रामीण भारत में बढ़ते वर्ग-संघर्ष का एक महत्वपूर्ण दस्तावेज है। कर्मभूमि में प्रेमचंद ने ग्रामीण अर्थव्यवस्था पर शहरी पूंजी के प्रभाव को अधिक सूक्ष्मता से चित्रित किया है। इसमें दिखाया गया है कि कैसे शहरों के बैंक, मिल-मालिक और व्यापारी गाँवों की अर्थव्यवस्था को नियंत्रित करने लगे हैं। जमींदारी प्रथा का अत्याचार अब केवल लगान वसूली तक सीमित नहीं है, बल्कि वह किसानों की जमीन हड़पने और उन्हें मजदूर बनाने की ओर बढ़ रहा है। इन उपन्यासों में प्रेमचंद ने किसान आंदोलनों के बीजारोपण का भी चित्रण किया है, जो बाद में गोदान में पूर्ण विकसित रूप में न दिखकर भी अपनी संभावना के रूप में मौजूद है।

6.3. तुलनात्मक अध्ययन: फकीर मोहन सेनापति के उपन्यास छ माण आठ गुंठ के संदर्भ में

प्रेमचंद के ग्रामीण यथार्थ की विशिष्टता को समझने के लिए उनकी तुलना बांग्ला साहित्य के प्रसिद्ध उपन्यासकार फकीर मोहन सेनापति के उपन्यास छ माण आठ गुंठ से की जा सकती है। यह उपन्यास भी किसानों की जमीन हड़पने की साजिश और उसके विरुद्ध संघर्ष की कहानी है। दोनों उपन्यासों में किसानों की आर्थिक विवशता और सामंती शोषण का चित्रण है, किंतु दोनों के यथार्थ के ज्ञान-मीमांसीय (epistemological) ढांचे में मौलिक अंतर है।

सेनापति का यथार्थवाद अधिक स्थानीय और विशिष्ट है, जबकि प्रेमचंद का यथार्थवाद अधिक व्यापक और प्रतिनिधित्वपूर्ण है। सेनापति के किसान ओड़िशा के विशिष्ट भौगोलिक और सांस्कृतिक परिवेश में रचे-बसे हैं, जबकि प्रेमचंद का होरी संपूर्ण उत्तर भारतीय किसान का प्रतिनिधि बन जाता है। प्रो. रामबक्ष जाट के अनुसार, "प्रेमचंद ने होरी के रूप में एक ऐसे किसान को खड़ा किया है, जो अपनी अस्तित्व-रक्षा के लिए लगातार जद्दोजहद करता है। अनेक कष्टों के बावजूद होरी की किसान बने रहने की हठ, इस उपन्यास को एक त्रासदी में बदल देती है" Jat (2020). यह 'किसान बने रहने की हठ' ही प्रेमचंद के यथार्थ की केंद्रीय संवेदना है, जो उन्हें सेनापति से अलग करती है।

6.4. जाति, वर्ग और अस्पृश्यता: सामाजिक समीकरणों का यथार्थ

प्रेमचंद के उपन्यासों में जाति-प्रश्न को केन्द्रीय स्थान प्राप्त है। उन्होंने न केवल अस्पृश्यता की बुराइयों को उजागर किया, बल्कि जाति और वर्ग के अंतर्संबंधों को भी रेखांकित किया। उनके उपन्यासों में जाति केवल एक सामाजिक विभाजन नहीं है, बल्कि आर्थिक शोषण का एक प्रमुख हथियार भी है।

6.5. गोदान में जाति गतिशीलता: जाटव, ठाकुर और ब्राह्मणों के बीच अंतर्संबंध

गोदान में जाति के विभिन्न स्तरों का एक जटिल जाल बिछा हुआ है। यहाँ ब्राह्मण (दातादीन, मिस्टर खन्ना), ठाकुर (राय साहब) और जाटव (होरी, धनिया, सिलिया) के बीच के अंतर्संबंधों को बड़ी सूक्ष्मता से चित्रित किया गया है। होरी को देखते हुए प्रेमचंद लिखते हैं, "उसके मन में न जाने कहाँ से यह संतोष आ गया कि ब्राह्मणों की सेवा करना ही उसका धर्म है" [Premchand \(1936\)](#). यह पंक्ति जाति-व्यवस्था द्वारा उत्पादित उस मानसिकता को उजागर करती है, जो शोषित को शोषण को स्वीकार करना ही धर्म समझाती है।

प्रेमचंद ने गोदान में ब्राह्मणीय धर्म के उस रूप का पर्दाफाश किया है, जो दिखावे और आडंबर पर आधारित है। पंडित दातादीन का चरित्र इसका सबसे अच्छा उदाहरण है। वे पूजा-पाठ करते हैं, किंतु उनके आचरण में धर्म का कोई स्थान नहीं है। वे सिलिया का यौन शोषण करते हैं और फिर उसे जाति से बहिष्कृत करा देते हैं। प्रेमचंद लिखते हैं, "दातादीन ने धर्म के नाम पर कितने ही अन्याय किए थे, कितने ही अत्याचार किए थे, पर कभी उन्हें धर्म-भ्रष्ट होने का संदेह नहीं हुआ" [Premchand \(1936\)](#). यहाँ प्रेमचंद उस ब्राह्मणीय धर्म की आलोचना कर रहे हैं, जो दिखावे की पवित्रता में तो विश्वास रखता है, किंतु वास्तविक नैतिकता से कोसों दूर है।

7. रंगभूमि: सूरदास का चरित्र - दलित-उत्पीड़न का रूपक

रंगभूमि (१९२५) प्रेमचंद का वह उपन्यास है, जिसमें उन्होंने अंधे भिखारी सूरदास के माध्यम से दलित-उत्पीड़न का सबसे सशक्त चित्रण किया है। सूरदास के पास एक छोटी-सी जमीन है, जिस पर एक अंग्रेज कंपनी सिगरेट का कारखाना लगाना चाहती है। सूरदास अपनी जमीन नहीं देना चाहता और इसी के लिए वह अंत तक संघर्ष करता है।

डॉ. रामविलास शर्मा के अनुसार, "सूरदास का अन्धापन एक प्रतीक है। वह उन लाखों किसानों का प्रतिनिधित्व करता है, जो आँख होते हुए भी उस शोषण को नहीं देख पाते, जो उनके साथ हो रहा है" [Sharma \(1978\)](#). किंतु प्रश्न यह भी है कि क्या सूरदास की 'अंधता' सामाजिक न्याय के प्रति एक नैतिक दृष्टि का प्रतीक है? इसका उत्तर सकारात्मक ही है। सूरदास शारीरिक रूप से अंधा है, किंतु उसकी नैतिक दृष्टि उन सबसे तीक्ष्ण है, जिनकी आँखें हैं। वह पहचान लेता है कि कारखाना गाँव के लिए वरदान नहीं, अभिशाप है। वह कहता है, "मैं अन्धा हूँ, पर देखता हूँ कि यह कारखाना हमारे गाँव को नरक बना देगा" [Premchand \(1925\)](#).

सूरदास का चरित्र इसलिए भी महत्वपूर्ण है कि वह दलित-उत्पीड़न के प्रति मात्र करुणा का पात्र नहीं है, बल्कि वह एक विद्रोही है। वह अंत तक अपनी जमीन के लिए लड़ता है और मरते दम तक हार नहीं मानता। उसकी मृत्यु पर प्रेमचंद लिखते हैं, "उस अन्धे ने यह सिद्ध कर दिया कि सत्य के आगे अन्धकार भी परास्त हो जाता है" [Premchand \(1925\)](#). यहीं सूरदास दलित-उत्पीड़न के मात्र शिकार से नायक में परिवर्तित हो जाता है।

7.1. सीमाओं का विमर्श: दलित चरित्रों का ऑन्टोलॉजिकल क्षितिज

प्रेमचंद के दलित चरित्रों की सबसे बड़ी सीमा यह है कि उनके लिए कोई 'ऑन्टोलॉजिकल क्षितिज' (ontological horizon) नहीं खुलता। तोराल जतिन गजरावाला के शब्दों में, "प्रेमचंद के दलित चरित्र एक 'सीमा बिंदु' (limit point) मात्र हैं, जहाँ सवर्ण नायक की नैतिक यात्रा समाप्त होती है" [Gajarawala \(2012\)](#). उनके पास अपनी कोई कहानी नहीं है, वे सवर्ण पात्रों की कहानी के सहायक मात्र हैं।

गोदान का सिलिया इसका उदाहरण है। वह उपन्यास के आरंभ में एक शोषित लड़की के रूप में आती है, किंतु अंत तक उसके चरित्र का कोई विकास नहीं होता। वह मात्र एक प्रसंग बनकर रह जाती है। आलोचक कमल किशोर गोयनका के अनुसार, "प्रेमचंद ने सिलिया के माध्यम से एक समस्या को तो उठाया, किंतु उस समस्या से जूझते हुए सिलिया को केन्द्र में नहीं रखा" [Goyanka \(1980\)](#)। यही प्रेमचंद के यथार्थवाद की ऐतिहासिक सीमा है कि वे दलित चेतना को उसकी संपूर्णता में नहीं देख पाए।

7.2. स्त्री-विमर्श और पारिवारिक संकट: नारी-दशा का यथार्थ चित्रण

प्रेमचंद के उपन्यासों में स्त्री-पात्र केवल सहायक भूमिका में नहीं हैं, बल्कि वे उपन्यास की केन्द्रीय संवेदना को धारण करते हैं। निर्मला, गबन और सेवासदन में उन्होंने स्त्री-जीवन के विभिन्न आयामों को उकेरा है।

7.3. निर्मला: असमान आयु के विवाह की त्रासदी

निर्मला (१९२७) प्रेमचंद का वह उपन्यास है, जिसमें उन्होंने असमान आयु के विवाह और दहेज प्रथा की समस्या को केन्द्र में रखा है। पन्द्रह वर्ष की निर्मला का विवाह चालीस वर्ष के मुंशी भुवनलाल से हो जाता है, जिसके पहले से ही तीन बेटे हैं।

निर्मला की त्रासदी का पहला कारण यह विवाह ही है। प्रेमचंद लिखते हैं, "निर्मला के जीवन में सुख का नाम न था। एक बूढ़े पति, तीन सौतेले बेटे, और ऊपर से दरिद्रता - ये चारों मिलकर उसे निरंतर कचोटते रहते थे" [Premchand \(1927\)](#)। किंतु निर्मला की त्रासदी केवल इतनी भर नहीं है। उसके जीवन में सबसे बड़ी त्रासदी उसका अपने सौतेले बेटे मनोहर के प्रति आकर्षण है, जिसे समाज अनैतिक ठहराता है।

प्रश्न यह है कि क्या निर्मला की त्रासदी मात्र एक सामाजिक बुराई का परिणाम है या मर्दाना संदेह का शिकार? डॉ. बच्चन सिंह के अनुसार, "निर्मला उस मर्दाना संदेह का शिकार है, जो स्त्री की स्वाभाविक भावनाओं को भी अपवित्र ठहरा देता है" [Singh \(2002\)](#)। मुंशी भुवनलाल को जब अपनी पत्नी और बेटे के बीच के संबंध पर संदेह होता है, तो वह इसे सुलझाने की बजाय और उलझा देता है। निर्मला अंत तक इसी संदेह और सामाजिक बंधनों के बीच पिसती रहती है।

7.4. गबन: जलपा का चरित्र और आधुनिकता की व्यथा

गबन (१९३१) में प्रेमचंद ने मध्यवर्गीय महत्वाकांक्षा और दिखावे की संस्कृति को चित्रित किया है। इस उपन्यास की नायिका जलपा एक सुंदर और महत्वाकांक्षी युवती है, जो शादी के बाद अपने पति रमानाथ से गहनों की मांग करती है। रमानाथ उसकी इच्छाओं को पूरा करने के लिए गबन करता है और फिर भाग खड़ा होता है।

जलपा का चरित्र इस बात का उदाहरण है कि कैसे आधुनिकता की चपेट में आई स्त्री अपनी पहचान खो बैठती है। प्रेमचंद लिखते हैं, "जलपा को स्वयं नहीं मालूम था कि वह क्या चाहती है। उसे केवल इतना मालूम था कि दूसरों के पास जो कुछ है, वह भी उसके पास होना चाहिए" [Premchand \(1931\)](#)। यह उपभोक्तावादी मानसिकता का सटीक चित्रण है।

किंतु जलपा का चरित्र केवल एक समस्या का प्रतिनिधित्व नहीं करता। उपन्यास के अंत में जलपा अपनी गलतियों को समझती है और रमानाथ की तलाश में निकलती है। आलोचक विजय मोहन सिंह के अनुसार, "जलपा का यह परिवर्तन प्रेमचंद के आदर्शोन्मुख यथार्थवाद का हिस्सा है, जहाँ स्त्री अपनी गलतियों से सीखकर एक नए जीवन की ओर बढ़ती है" [Singh \(2002\)](#)

7.5. सेवासदन: वैश्या समस्या और स्त्री मुक्ति के स्वर

सेवासदन (१९१९) प्रेमचंद का पहला प्रमुख उपन्यास है, जिसमें उन्होंने वैश्या समस्या को केन्द्र में रखा है। सुमन, जो एक सुशिक्षित और सुसंस्कृत युवती है, विवाह के बाद पति के घर से निकाल दी जाती है और परिस्थितियों के कारण वैश्या बनने को विवश हो जाती है।

प्रेमचंद ने सेवासदन में 'पतिता' के प्रश्न को सामाजिक सुधार आंदोलन से जोड़ा है। वे यह दिखाते हैं कि वैश्या-वृत्ति कोई व्यक्तिगत पतन नहीं, बल्कि सामाजिक व्यवस्था का परिणाम है। उपन्यास के अंत में सुमन 'सेवासदन' की स्थापना करती है, जहाँ पतित स्त्रियों को आश्रय मिलता है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल के अनुसार, "सेवासदन में प्रेमचंद ने यह सिद्ध किया कि स्त्री का पतन उसका व्यक्तिगत दोष नहीं, बल्कि समाज की विसंगति है" [Shukla \(1941\)](#).

7.6. शहरी मध्यवर्ग और नैतिक मूल्यों का संकट

प्रेमचंद ने केवल ग्रामीण भारत का ही नहीं, बल्कि शहरी मध्यवर्ग के जीवन का भी गहराई से चित्रण किया है। उनके उपन्यासों में शहरी जीवन की जटिलताओं और नैतिक मूल्यों के संकट को बड़ी सूक्ष्मता से उकेरा गया है।

7.7. कर्मभूमि: शहरी राजनीति और मध्यवर्ग की दुविधा

कर्मभूमि (१९३२) में प्रेमचंद ने शहरी राजनीति, शिक्षा के बदलते स्वरूप और राष्ट्रीय आंदोलन के प्रति मध्यवर्ग की दुविधा का चित्रण किया है। इस उपन्यास का नायक अमरकान्त एक ऐसा युवक है, जो अपने समय की राजनीतिक चेतना से जूझता है। एक ओर वह गांधीवादी आदर्शों से प्रभावित है, तो दूसरी ओर उसकी निजी महत्वाकांक्षाएँ भी हैं।

प्रेमचंद ने कर्मभूमि में शिक्षा के बदलते स्वरूप पर गहरी चोट की है। वे लिखते हैं, "शिक्षा का उद्देश्य अब जीवन को ऊँचा उठाना नहीं, केवल नौकरी पाना रह गया है" [Premchand \(1932\)](#). यह उस समय के मध्यवर्ग की उस मानसिकता को उजागर करता है, जो शिक्षा को मात्र रोजगार का साधन मानने लगी थी।

7.8. गबन और चौराहे की भीड़: नैतिक दुविधा का यथार्थ

गबन और चौराहे की भीड़ (अप्रकाशित) में प्रेमचंद ने शहरी जीवन की नैतिक दुविधा (moral ambiguity) को उजागर किया है। गबन का रमानाथ एक ईमानदार युवक है, किंतु परिस्थितियाँ उसे बेईमान बना देती हैं। प्रेमचंद लिखते हैं, "रमानाथ ने सोचा था कि वह कभी बेईमानी नहीं करेगा, किंतु आज वह बेईमान था। यह परिस्थितियों का खेल था" [Premchand \(1932\)](#). इन उपन्यासों में प्रेमचंद का यथार्थवाद यह दिखाने में सफल होता है कि शहरी जीवन में ईमानदारी और बेईमानी के बीच की रेखा बहुत पतली हो गई है। बढ़ता उपभोक्तावाद और दिखावे की संस्कृति व्यक्ति को नैतिक रूप से कमजोर बना देती है।

7.9. प्रेमचंद की यथार्थवादी शैली: भाषा, शिल्प और चरित्रांकन

प्रेमचंद की यथार्थवादी दृष्टि को उनकी शैली से अलग नहीं किया जा सकता। उनकी भाषा, शिल्प और चरित्रांकन की तकनीक उनके यथार्थवाद को मूर्त रूप प्रदान करती है।

8. भाषा का सामाजिक यथार्थ

प्रेमचंद की भाषा उर्दू-हिंदी का वह मिश्रित रूप है, जो उत्तर भारत में बोली जाती थी। किंतु उनकी भाषा की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वह पात्रानुकूल है। किसान की भाषा अलग है, साहूकार की अलग और स्त्री पात्रों की अलग। गोदान में होरी की भाषा में ग्रामीण बोली का प्रभाव है, जबकि मिस्टर खन्ना की भाषा में अंग्रेजी का मिश्रण है। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी के अनुसार, "प्रेमचंद की भाषा में वह लचीलापन है, जो हर पात्र को उसकी अपनी भाषा देता है" Dwivedi (1952).

8.1. चरित्रांकन की तकनीक: प्रतिनिधि चरित्रों का सृजन

प्रेमचंद 'टाइप' (प्रतिनिधि चरित्र) का सृजन करते हैं। होरी, सूरदास, निर्मला और हामिद जैसे पात्र एक पूरी सामाजिक व्यवस्था के प्रतीक बन जाते हैं। होरी केवल एक किसान नहीं है, वह संपूर्ण भारतीय किसान-वर्ग का प्रतिनिधित्व करता है। डॉ. रामविलास शर्मा के अनुसार, "प्रेमचंद के चरित्र व्यक्ति होते हुए भी समष्टि का प्रतिनिधित्व करते हैं" Sharma (1978).

संवाद और वातावरण

प्रेमचंद के उपन्यासों में ग्रामीण परिवेश का सजीव चित्रण मिलता है। उनके संवादों में सामाजिक विडंबना छिपी होती है। गोदान में जब होरी कहता है, "जब दूसरे के पाँव तले अपनी गर्दन दबी है तो उन पाँवों को सहलाने में ही अपनी कुशल है" Premchand (1936), तो यह वाक्य केवल होरी का नहीं, बल्कि पूरी व्यवस्था का सच बयान करता है।

संश्लेषण और निष्कर्ष

प्रस्तुत शोध के निष्कर्ष में यह स्पष्ट होता है कि प्रेमचंद का यथार्थवाद दया और करुणा से शुरू होकर न्याय और समानता की मांग तक पहुँचता है। उनके उपन्यासों में जहाँ एक ओर शोषण का मार्मिक चित्रण है, वहीं दूसरी ओर उससे मुक्ति की आकांक्षा भी है। आचार्य नंददुलारे वाजपेयी के शब्दों में, "प्रेमचंद ने हमें दुख का एहसास ही नहीं कराया, बल्कि उससे उबरने की राह भी दिखाई" Vajpeyi (1955).

सीमाओं की स्वीकारोक्ति

साथ ही, यह भी स्वीकार करना होगा कि प्रेमचंद के यथार्थवाद की कुछ ऐतिहासिक सीमाएँ हैं। दलित आलोचना और स्त्रीवादी आलोचना ने यह रेखांकित किया है कि प्रेमचंद दलित चेतना और स्त्री-चेतना को उसकी संपूर्णता में नहीं देख पाए। उनके दलित चरित्र अक्सर 'सीमा बिंदु' मात्र बनकर रह जाते हैं।

9. प्रासंगिकता

इन सीमाओं के बावजूद, प्रेमचंद की प्रासंगिकता आज भी उतनी ही है, जितनी उनके समय में थी। आज के भारत में जाति हिंसा, किसान आंदोलन और महिला सुरक्षा के संदर्भ में प्रेमचंद के उपन्यास नए सिरे से पढ़े जाने चाहिए। डॉ. नामवर सिंह के अनुसार, "प्रेमचंद आज भी उतने ही ताज़ा हैं, जितने कल थे। उनके साहित्य में वह ताकत है, जो हर दौर में नए सवाल खड़े करती है" Singh (2002).

REFERENCES

- Chandra, B. (1989). History of Modern India (आधुनिक भारत का इतिहास).
 Dwivedi, H. P. (1952). Early Period of Hindi Literature (हिंदी साहित्य का आदिकाल).
 Gajarawala, T. J. (2012). Untouchable Fictions: Literary Realism and the Crisis of Caste (अछूत कथाएँ: साहित्यिक यथार्थवाद और जाति का संकट).
 Goyanka, K. K. (1980). Premchand and Gandhism (प्रेमचंद और गांधीवाद).

- Jat, R. (2020). Novels of Premchand: Various Dimensions (प्रेमचंद के उपन्यास: विविध आयाम).
- Lukács, G. (1962). The Historical Novel (द हिस्टॉरिकल नॉवेल).
- Premchand (1919). Sevasadan (सेवासदन).
- Premchand (1922). Premashram (प्रेमाश्रम).
- Premchand (1925). Rangbhoomi (रंगभूमि).
- Premchand (1927). Nirmala (निर्मला).
- Premchand (1931). Gaban (गबन).
- Premchand (1932). Karmabhoomi (कर्मभूमि).
- Premchand (1936). Godan (गोदान).
- Premchand (1954). The Purpose of Literature (साहित्य का उद्देश्य).
- Senapati, F. M. (1962). Six Acres and a Third (छः माना आठ गुंठा).
- Sharma, R. (1978). Premchand and His Era (प्रेमचंद और उनका युग).
- Shukla, R. (1941). History of Hindi Literature (हिंदी साहित्य का इतिहास).
- Singh, B. (2002). Feminist Discourse in Premchand's Novels (प्रेमचंद के उपन्यासों में स्त्री-विमर्श).
- Singh, N. (1999). Story: New Story (कहानी: नई कहानी).
- Singh, V. M. (2005). Premchand: Contextual Evaluation (प्रेमचंद: युग सापेक्ष मूल्यांकन).
- Vajpeyi, N. D. (1955). Premchand: A Literary Study (प्रेमचंद: एक साहित्यिक अध्ययन).